मराठी आत्मकथाओं का मूल्यांकन

✍ वृषाली मांद्रेकर

भारतीय भाषाओं के साहित्य में मराठी आत्मकथा समृद्ध एवं विकसित मानी जाती है। इसका श्रेय दलित एवं नारी रचनाकारों को जाता है। दलित लेखन की परंपरा राम नगरकर से शुरू होकर आजतक सतत विद्यमान है। इसमें ख्यातनाम लेखकों की पत्नियों ने भी अहम् भूमिका निभाई है।

यहाँ आत्मकथा की अवधारणा को संक्षिप्त रूप से स्पष्ट कर देना समीचीन होगा। आत्मकथा 'स्व' का अपने द्वारा लिखा हुआ लेखन है। आत्मकथा में कलाकार अपनी कलाकृति से स्वानुभूतिपरक लेखन करता है, जो यथार्थ में अपने जीवन में घटित हुआ है। लेखक 'स्व' जीवन के भूतकालिक घटनाओं के स्मृतिपटल को रेखांकित करते हुए वर्तमान से जुड़ा होता है। लेखक ने जिस परिवेश में जन्म लिया, वहाँ के संस्कार, भाषा, जीवन पद्धति का परिणाम उसके आत्मकथा लेखन पर होता है।

रॉय पास्कल ने जैसे स्वीकार किया है - It is a judgement on the past within the framework of the present or document in the care as well as a sentence.

कभी हरिवंशराय बच्चन जी ने आत्मकथा को विश्लेषित करते हुए कहा था - "क्या कभी सुभीते से बैठकर सुधियों को इस रोल को इच्छानुसार इच्छित गति से, सीधा-उल्टा चलाकर, रोककर जिए हुए को फिर जीना असंभव है? जिए हुए को अधिक व्यापकता से अधिक सघनता से, अर्थात् कला में सृजन में जीकर इन रूप-रंगों, ध्वनियों, भावनाओं घटनाओं में से कुछ पकड़ा जा सकता है, वही प्रयास यह लेखन है।"

साहित्यकार को आत्मकथा में आत्मप्रदर्शन को टालते हुए आत्मानुभूति को वस्तुनिष्ठ दृष्टि से व्यक्त करना चाहिए, ताकि उसमें आडम्बर अवास्तविकता, अवास्तवता न आ पाए, और न ही वह एकांगी बने। इसप्रकार कह सकते हैं कि स्वानुभूति, सत्यकथन, स्व की गवेषणा, समकालीन जीवन चित्रण, मनुष्य स्वभाव के विविध पहलुओं का दर्शन आत्मकथा में होता है।

नवें दशक में मराठी में बहुत सी आत्मकथाओं का सृजन हुआ लेकिन सभी का मूल्यांकन असंभव है, अतएव मैंने कुछ विविध विषयों से सम्बन्धित आत्मकथाओं को चुना है।

प्रस्तुत दशक के प्रारंभ में यानी 1984 में प्रसिद्ध दलित लेखक नामदेव ढसाळ की पत्नी मलिका अमर शेख की 'मेला उध्वस्त व्हायचय' आत्मकथा प्रकाशित हुई। प्रस्तुत रचना ने पुरुष मानसिकता के उन पक्षों को छुआ है। जिसमें कि सम्पूर्ण पुरुष समाज झनझना उठेगा।

इसी वर्ष शरणकुमार लिंबाळे की 'अक्करमाशी' रचना प्रकाशित हुई, जो कि आज मराठी आत्मकथा साहित्य में मील का पत्थर साबित हो रही है। इसी क्रम में लक्ष्मण गायकवाड की 'उचल्या' (1987), माधवी देसाई की 'नाच घ घुमा' (1988), शांत हुबळीकर की 'कशाला उद्याची बात' (1990) और सुनिता देशपांडे की 'आहे मनोहर तरी' (1990) रचनाएँ आयीं। इनमें मुख्यतः दलित विमर्श तथा नारी विमर्श को स्पर्श किया गया है।

मराठी के लोकप्रिय कवि नामदेव ढसाळ की पत्नी मलिका अमरशेख ने अपनी 'मला उध्वस्त व्हायचय' नामक आत्मकथा में पति की स्वानुभूति, शराबी वासनात्मक शोषण प्रवृत्तियों का यथार्थ चित्रण किया है। प्रस्तुत रचना को पढ़ने के बाद ढसाळ को दलित कवि कहते हुए संकोच होता है जिसमें कथनी और करनी में कहीं भी एकरूपता नहीं दिखाई देती है।

मलिका एक सामान्य नारी होते हुए भी, दलित पँथर के संस्थापक और लोकप्रिय दलित कवि नामदेव ढसाळ के प्रति अपनी व्यथा को उद्घाटित करती है वह स्वयं लिखती है - "स्त्री जबतक लज्जा, संकोच, त्याग, सहनशीलता का वस्त्र नहीं उतारती, तब तक उसकी पीड़ा, दुःख यह सब दुर्लक्षित अथवा कृत्रिम माना जाता है, और स्त्री के दुःखों को तो समाज में मान्यता है लेकिन उसमें उसे प्रशंसा, सहानुभूति अथवा भस्मसात होने के अलावा कुछ नहीं मिलता"।

कहने का तात्पर्य यह है कि सामाजिक जीवन में पीड़ा एवं कष्ट भोगने की उनकी नियति के रूप में देखा जाता है। पारिवारिक एवं सामाजिक नियमों के बंधनों में बंधी नारी बहुत ज्यादा जुर्म भोगते और सहते हुए भी उसे छिपाकर रखती है। लेकिन उसके आचरण और व्यवहार से ऐसा लगता है कि वह बहुत खुश है।

इस आत्मकथा को पढ़ने के बाद मन में एक ही प्रश्न बार-बार उभरकर आता है कि पुरुष प्रधान समाज में लेखिका ने अपने पति के खिलाफ निर्भीक होकर कैसे अपनी स्पष्टवादिता का परिचय दिया है। इसके साथ ही वह पारिवारिक मजबूरियों के कारण समझौता भी करती है। प्रस्तुत आत्मकथा हमें सवालों के घेरे में खड़ा कर देती है। जो व्यक्ति दलितों के दुःखों के प्रति इतना संवेदनशील है कि वह अपनी पत्नी के प्रति इतना क्रूर निर्दयी कैसे हो सकता है। कहीं यह आत्मचरित्र एकांगी तो नहीं है, जहाँ मलिका अपने गुनाहों को छिपाकर अपने पति की बात का बतंगड़ बना रही है।

मलिका ने अपने कवि पति की कविताओं की प्रशंशा की है। उन्होंने यह मत अभिव्यक्त किया है - " 'उषाकिरण' च्या पायथ्याशी झोपड्यात राहणारा... न् दिवसभर गांजा ओढून रात्री टॅक्सीत झोपून राहणारा ..... झपाटलेल्या वादळागत हिंडणारा.... न् समाजवादी कंपूत ओढला गेल्यानं सामाजिक जाणिवेची ओळख होऊन कवितेची संगत धरणारा नामदेव!" (पृष्ठ - 31)

इसका हिन्दी भावानुवाद है - " 'उषाकिरण' के पास झोपड़ी में रहनेवाला...दिनभर गांजा पीने वाला, संपूर्ण रात टॅक्सी में सोने वाला ..... झंझावाती तूफान की तरह घूमनेवाला .... और समाजवादी गुट में खीचा हुआ होने के कारण सामाजिकता की पहचान कविता में बनानेवाला नामदेव"

मलिका ने कवि पति की अच्छाईयों को स्वीकारते हुए भी अधिकतर उनके कटु व्यवहारों का जिक्र किया है। परंपरा से बंधे पति-पत्नी एक दूसरों के व्यवहारों से असन्तुष्ट होकर भी जीवन जीते है। लोकप्रिय मराठी कवि होते हुए भी पारिवारिक जिम्मेदारी के प्रति लापरवाह गैर जिम्मेदाराना हरकतें करना, महीनों-महीनों तक घर न आना, वेश्यागमन में प्रवृत्त रहना, मित्र मंडली के साथ गुलछर्रे उड़ाना, रात में घर विलम्ब से आना आदि ढसाळ की मानवीय दुर्बलताएँ हैं, जिसका कि लेखिका ने स्पष्ट शब्दों में अपनी आत्मकथा में उल्लेख किया है। (पृष्ठ-66)

मलिका को इन सबके कारण अपने नामदेव को गँवाना पड़ा - वह स्वयं कहती है .... 'दुष्ट चक्र सुरुच झालं .... पिणं, भांडणं, शिव्यागाळ, मारहाण पण ह्या दुःखाहून प्रचंड दुःख होतं की मी माझा पूर्वीचा नामदेव हरवून बसले।' (पृष्ठ - 67)

इसका हिन्दी भावानुवाद है - "दुष्ट चक्र शुरू हुआ .... पीना, झगड़ना, गालियाँ बकना, मारपीट, लेकिन इस दुःख से भी बढ़कर यह गहरी वेदना थी कि मैंने पहले का नामदेव खोया था।

दलित आत्मकथा लेखन में शरण कुमार लिंबाळे का नाम विशेष रूप से लिया जाता है। शरण कुमार के पिता लिंगायत थे और माँ महार अर्थात् दलित थी, वैसे तो पिता का धर्म अपनाया जाता है और वह दलित से श्रेष्ठ भी थे लेकिन उन्होंने अपने को दलित समझा। अपनी आत्मकथा में शिक्षा-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, आर्थिक परिस्थिति, जाँति-पाँत, भेद-भाव, अपमान जनक स्थितियों का यथार्थ चित्रण किया।

भूख को मिटाने की एक दिल को छूने वाली घटना लेखक ने व्यक्त की है। वनभोजन के लिए शिक्षक के साथ पहली से सातवीं कक्षा के छात्र पहली बार गये थे। दलित बच्चों की दोपहर में घर से बासी रोटियों के टुकड़े खाने से भूख नहीं मिटी थी। सवर्णों के बच्चों ने बचा हुआ खाना इनको दिया था... "पर हम सबके प्राण तो उस जूठन में ही अटक गए थे मारुति उस जूठन को लेकर आगे बढ़ने लगा और हम चीलों की तरह उसके पीछे-पीछे चलने लगे।" (पृष्ठ - 3)

इस घटना को माँ को बताने के बाद उसने कहा था कि 'उस जूठन को घर क्यों नहीं लाये, बचा हुआ अन्न अमृत समान होता है।' (पृष्ठ - 3)

भारतीय परंपरा, रीति-रिवाज की सांस्कृतिक चक्की में पिसती हुई नारी जीवन की व्यथा-कथा को हम माधवी देसाई की प्रसिद्ध रचना 'नाच ग घुमा' (नाच री घुमा हिन्दी में अनुवादित) में देख सकते हैं। इसे यदि नारी - त्रासदी का दस्तावेज कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। दरअसल इस रचना का सम्पूर्ण तानाबाना मंगलागौरी में गाए जाने वाले गीत से होता है। इसमें नारी जीवन के विविध रूपों को व्यक्त किया गया है। यहाँ उसके कारक तत्वों में परिवार समाज एवं परिवेश जीवंत हो उठा है - "अजुनी या देशात स्त्रियांना सती जाऊ देतात? कुणी बिचारी जळून जाते। कुणी या अग्निदाहानं भ्रमिष्ट होते ..... पण हे कुणी ठरवायचं?" (पृष्ठ 32)

जिसका हिन्दी में भावानुवाद है - "अभी भी इस देश में नारियाँ सती हो रही है? कोई बेचारी जलकर खाक हो जाती है, तो कोई इस अग्निदाह से भ्रमिष्ट हो जाती है। कोई शापित.... चिता पर चढ़ कर भी जीवंत .... वह शायद पतिव्रता ही नहीं है, लेकिन यह कौन तय करेगा?"

मीडिया के खास कर सिनेमा जगत के अनुभवों का लेखा-जोखा शांता हुबळीकर ने अपनी 'कशाला उद्याची बात' रचना में किया है। उनके यश और धन का दुरुपयोग पति-पुत्र द्वारा किस प्रकार किया गया इसका यथार्थ चित्रण उक्त रचना में हुआ है। उनके जीवन में यहाँ तक नौबत आ जाती है कि उनको घर-बार छोड़कर वसई के श्रद्धानंद आश्रम में जीवन बिताना पड़ता है। यहीं परिवार में विवश उनकी मार्मिक अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं। शांता जी के जीवन में माधव गडकरी (लोकसत्ता के संपादक) द्वारा लिखे लेख के द्वारा एक नया मोड़ आता है। इन्होंने प्रस्तुत आत्मकथा में बचपन से लेकर सत्तर वर्ष तक के जीवन के विविध पक्षों को उकेरा है। उन्हें दिग्दर्शक व्ही शांताराम, भालजी पेंढारकर, व्ही०एम० व्यास, विश्राम बेडेकर आदि लोगों के साथ कार्य करने और उनके विचारों से अवगत होने का भी अवसर मिला।

'आहे मनोहर तरी गमते उदास' - (1990) आत्मकथा - शीर्षक से ही सुनीता के जीवन की उदासीनता का पता चल जाता है।

प्रस्तुत रचना की भूमिका में लेखिका का यह कथन दृष्टव्य है - "यह आत्मचरित्र नहीं बल्कि यादों के प्रदेशों में मुक्त भ्रमण है। पंछी की तरह एक-एक पत्ते पर एक टहनी से दूसरी टहनी पर कहीं से भी कहीं पर (एक स्थान से दूसरे स्थान पर) लेकिन अपने ही जीवनसूत्रों से अदृश्य संबंध बरकरार रखते हुए।" (पृष्ठ - 1)

'व्यक्ती आणि वल्ली' (व्यक्ति चित्रण), 'बटाट्याची चाळ', 'वाप्यावरची वरात', 'असा मी असामी', 'वटवट' (प्रहसन), 'तुझं आहे तुजपाशी', 'अंमलदार' (नाटक) 'अपूर्वाई', (यात्रासाहित्य), 'गोळा बेरीज' (ललित निबंध) आदि की रचना पु०ल० देशपांडे ने की। रचनाकार के रूप में ही नहीं अपितु एक निर्देशक एवं रंगकर्मी के रूप में भी इन्होंने काफी ख्याति अर्जित की है फिर भी उनकी पत्नी कहीं न कहीं अंदर से उदास हैं। उनका कहना है कि - 'माझ्या अस्तित्वाचाच ज्याला हरघडी विसर पडतो तो आपला कुणीही नव्हे असेच वाटू लागले' (पृष्ठ - 181)

जिसका हिन्दी में भावानुवाद है - 'मेरे अस्तित्व को जो हरदम भूल जाते हैं, वे मेरे कोई नहीं हैं ऐसा ही मुझे

महसूस हुआ'। सुनीता देशपांडे ने उक्त आत्मकथा में भाई (पु०ल० देशपांडे का पारिवारिक नाम) के जीवन के अच्छे - बुरे संदर्भों की एक-एक पर्त खोलकर रख दी है जबकि वे साहित्य, संगीत कला में मर्मज्ञ, विनोदी (हाजिर जबाबी) स्वभाव के, सिद्धहस्त, प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे। नाटक और वक्तृत्व के क्षेत्र में महारत हासिल करने वाले देशपांडे का समकालीन लेखकों में विशिष्ट एवं जनमानस में लोकप्रिय स्थान था।

पुरुष वर्चस्व मानसिकता से ग्रस्त देशपांडे ने अपनी पत्नी के कार्यों की कभी प्रशंसा नहीं की न ही कभी मदद की। उनके अनुसार '.....इसके बाद बहुत बार पूना बम्बई की यात्रा की। .... लेकिन भाई (देशपांडे) ने कभी भी मदद के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। 'आस्था दिखानी चाहिए' ऐसे कभी भाई के दिमाग में नहीं आया। (पृष्ठ 124)

उनको सुनीता जी के भविष्य की चिंता लगी रहती थी लेकिन भाई ने कारोबार अपने हाथ में लेकर उसमें हाथ नहीं बटाया, न ही कुछ ऐसी तजवीज की। उल्टा उन्होंने सुनीता पर विश्वास इस मनोदय के साथ रखा कि 'वह उन सारी जिम्मेदारियों को अच्छी तरह वहन करेगी। (पृष्ठ 179)

सुनीता अपनी रचना में जगह-जगह पर 'भाई' के व्यावहारिक बुद्धि की अल्पज्ञता एवं उनके गैर जिम्मेदाराना हरकतों की चर्चा करते हुए स्वयं को इसका जिम्मेदार मानती है। सम्पूर्ण रचना के विविध प्रसंगों के तहत उन्होंने पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक दांव-पेंचों, षडयंत्रों आदि का बयान किया है। इसके साथ ही स्वतंत्रता संग्राम, गोवा मुक्ति के विविध आंदोलनों और भाषाई आधार पर प्रांतों की रचना आदि का ब्योरेवार सजीव चित्रण किया है इसे उनके जीवनानुभवों का यथार्थ दस्तावेज कहा जा सकता है। इसप्रकार प्रस्तुत रचना की लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि अब तक 'आहे मनोहर तरी गमते उदास' आत्मकथा के 12 संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

इस दौर के एक अन्य आत्मकथा लेखक के रूप में लक्ष्मण गायकवाड का नाम लिया जाता है। इन्होंने सन् 1987 में 'उचल्या' (हिन्दी अनुवाद उचक्का) नामक आत्मकथा की रचना की। प्रस्तुत आत्मकथा में इन्होंने अपने जातीय जीवन के विभिन्न अंगों और पहलुओं का उल्लेख करते हुए सामाजिक अत्याचारों का सजीव चित्रण किया है।

दलितों को हजारों सालों से समाज तथा वर्णव्यवस्था ने हिकारतभरी दृष्टि से नकारा है। जीवन यापन करने हेतु कार्य करने के सभी मार्ग बंद होने के कारण चोरी करने का एक ही पर्याय इनके सामने खुला था, जिस कारण इनको बहुत से अत्याचारों का सामना करना पड़ा जिसका वर्णन लक्ष्मण गायकवाड ने ' उचल्या' (1987) आत्मकथा में किया है।

इस आत्मकथन के प्रारंभिक पन्नों में गायकवाड ने अपने आज्या-आजी तथा अपने भाई के संदर्भ में घटित घटनाओं का रेखांकन किया है। आज्या को पुलिस पकड़कर ले गयी थी, उनको बहुत मारने के बाद जेल में डाला गया, जेल से छूटने के बाद दिन में दो बार गधे पर बैठकर पुलिस स्टेशन जाना पड़ता था। थोड़े दिनों बाद वह निजाम सरकार का हेर बन गया इस शर्त पर कि वह चोरी करने वाले अपने लोगों के नाम बतायें, इधर इन लोगों का चोरी करना मुश्किल हो गया तो कुल्हाड़ी से आज्या को काटकर झोपड़ी के साथ जला डाला। इसकी छानबीन करना तो दूर की बात है, पुलिस में केस तक दर्ज नहीं किया गया।

यह जाति मूलतः तेलुगु भाषिक है जहाँ इनको संता मुचलर के नाम से जाना जाता है, जिसका मतलब है - संता याने बाजार, मुचर याने चोरी करनेवाला। चोरी करने के प्रकारों का भी यहाँ उल्लेख किया है। (1) खिस्तंग मतने (जेब कतरना), (2) चपूल मुठल माने (चप्पल तथा पोटलियाँ चुराना), (3) पड्डू घालने (ठगना), (4) उठेवारी (वार्तालाप करते-करते फँसाना, उदा० नकली गहनों को असली गहनों के स्थान पर रखना)

लेखक पर भी चोरी सीखने के लिए दबाव डाला जाता था लेकिन गायकवाड ने शिक्षाप्राप्ति को ही अपने जीवन का लक्ष्य माना। इसमें बहुतसी बाधायें आयीं, जैसे ब्राह्मण, मराठा समाज के बच्चे उनकी पढ़ाई में व्यवधान पैदा करते थे, फिर भी अपने पिता तथा कुलकर्णी सर के आशीर्वाद से पढ़ते रहे। गायकवाड ने हिंसा, उत्पीड़न, दमन, शोषण आदि का बेबाक चित्रण किया है। उचक्का

समाज में प्रचलित मान्यताओं अंधविश्वासों, युगीन परिस्थितियों से झूजते मनुष्यों का, नरक से बदतर जिंदगी जीने वाले, बिलबिलाते कीड़े-मकौड़े के समान रेंगने वाले अपने जाति भाईयों का वर्णन जब पढ़ते हैं तो महसूस होने लगता है कि स्वातंत्र्योत्तर समाज में स्वतंत्रता की प्राप्ति किसे हुई है? यह दलित तो आज भी पराधीन है। लक्ष्मण गायकवाड की जगह और कोई होता तो शायद परिस्थितियों के सामने घुटने टेंकता लेकिन जिस परिश्रम और लगन से वे सामाजिक कार्यकर्ता बने उस हिंम्मत की दाद देनी पड़ेगी।

कहीं-कहीं उन्होंने सामंती समाज पर व्यंग्य भी किया है। उनके द्वारा बनाये छोटे से तुळजामाय के मंदिर के समझ बकरे की बली चढ़ायी जाती थी और परंपरानुसार एक हिस्सा गाँव के 'पाटील' को भेजा जाता था। पाटील के यहाँ से परडी (बास्केट) लाने हेतु जब गायकवाड जाते हैं तब वे (पाटील) कहते हैं कि इसमें सिर्फ मटण डालो, हमें पाथरूटों का (उच्चकों का) आटा-नमक नहीं चलता। तब गायकवाड की यह प्रतिक्रिया है कि - "या पाटलाला कोरडं मीट पीट चालत न्हाय तर वल्लं मटान कसं चलत असल?" मतलब कि "इस पाटील को सूखा नमक-आटा रास नहीं आता तो गीला मटन कैसे चलता है?"

इन दलित आत्मकथाओं में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, मानसिक, शोषित स्थितियों का चित्रण ही नहीं हुआ है, बल्कि उनके रीतिरिवाज, रूढ़ि-परंपरा, उच्चवर्णियों की सोच, दलितों पर होने वाले अत्याचार तथा उनमें उभरती चेतना का भी सूक्ष्मता से रेखांकन किया है। समाजव्यवस्था दरिद्रता, गरीबी, सवर्णों की शिक्षाव्यवस्था में पढ़ने की कोशिश, जैसे-तैसे जीने की असहाय चेष्टा जहाँ मानवता का अंत हो गया है ऐसे पंक में और धँसते जाने का डर, मानसिक ऊथल पुथल, दीन-हीन भावनायें, अन्याय, अत्याचार का बेबाक वर्णन किया गया है।

***